



**जो समाज अपने सद्दिधान्तों के ऊपर अपने विशेषाधिकारों को महत्त्व देता है, वह दोनों से हाथ धो बैठता है**

**जीवन का अंतिम मूल्य केवल जीवति रहने पर नहीं, बल्कि जागरूकता और चतन की शक्ति पर निर्भर करता है।**

**—अरस्तू**

"जो लोग अपने सद्दिधान्तों से ज्यादा अपने विशेषाधिकारों को महत्त्व देते हैं, वह दोनों से हाथ धो बैठता है" यह कथन नैतिक मानकों और व्यक्तिगत लाभों के बीच संतुलन बनाए रखने के महत्त्व के बारे में एक गहन चेतावनी के रूप में कार्य करता है। यह संतुलन एक न्यायपूर्ण और कार्यात्मक समाज को बनाए रखने के लिये महत्त्वपूर्ण है। इतिहास से ज्ञात होता है कि जब समुदाय मूलभूत सद्दिधान्तों पर अल्पकालिक लाभ को प्राथमिकता देते हैं, तो उन्हें अक्सर पतन और अस्थिरता का सामना करना पड़ता है। यह स्थायी स्थिरता और न्याय सुनिश्चित करने के लिये समाजों के लिये अपने सद्दिधान्तों को बनाए रखने की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

संपूर्ण इतिहास में, समाज को सद्दिधान्तों के साथ विशेषाधिकारों को संतुलित करने की चुनौती का सामना करना पड़ा है। भारत इस गतिशीलता का एक सम्मोहक उदाहरण प्रस्तुत करता है। ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान, भारतीय समाज ने अपने सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य में एक महत्त्वपूर्ण बदलाव का अनुभव किया। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी आरंभ में व्यापार के लिये भारत आई थी, लेकिन धीरे-धीरे, आर्थिक और राजनीतिक नियंत्रण के लालच ने उन्हें अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये प्रेरित किया, भारतीय लोगों के लिये न्याय और समानता के सद्दिधान्तों पर अपने विशेषाधिकारों को प्राथमिकता दी।

जैसे-जैसे ब्रिटिश औपनिवेशिक शासकों ने धन और शक्ति को अपने बीच केंद्रित किया और भारतीय अभिजात वर्ग के एक चुनदा समूह ने उनके साथ सहयोग किया, सामुदायिक कल्याण के मूलभूत सद्दिधान्त नष्ट हो गए। स्वशासन की पारंपरिक प्रणालियों, जो सामाजिक उत्तरदायित्व और सांप्रदायिक सद्भाव के सद्दिधान्तों पर आधारित थीं, कमजोर हो गईं। अंग्रेजों की शोषणकारी आर्थिक नीतियों और कठोर प्रशासनिक उपायों, जैसे भारी कराधान और संसाधनों की निकासी ने भारतीय आबादी के बीच गरीबी और असमानता में वृद्धि की।

नैतिक शासन के प्रति इस उपेक्षा और स्थानीय आबादी के कल्याण की अपेक्षा औपनिवेशिक विशेषाधिकारों को प्राथमिकता देने से व्यापक असंतोष और प्रतिरोध उत्पन्न हुआ। भारत में औपनिवेशिक काल इस बात का उदाहरण है कि सद्दिधान्तों पर विशेषाधिकारों को प्राथमिकता देने से सामाजिक अशांति और अंततः सत्ताधारी शक्तियों का नियंत्रण समाप्त हो सकता है। यह एक स्थिर और एकजुट समाज सुनिश्चित करने के लिये न्याय और समानता के सद्दिधान्तों का पालन करने के महत्त्व को रेखांकित करता है।

ब्रिटिश औपनिवेशिक नियंत्रण से स्वतंत्र होने के लिये भारत का संघर्ष इस बात का प्रमाण है कि विशेषाधिकारों पर सद्दिधान्त हावी हो सकते हैं। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल जैसे लोगों द्वारा संचालित भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन स्वशासन, न्याय और समानता के सद्दिधान्तों से प्रेरित था। अंग्रेजों के साथ सहयोग से मिलने वाले लाभों और सुख-सुविधाओं के बावजूद, कई भारतीय अभिजात वर्ग ने इसके बजाय राष्ट्रवादी संघर्ष का मार्ग चुना।

स्वतंत्रता के बाद, भारत ने अपने संविधान में नैतिक सद्दिधान्तों के आधार पर एक लोकतांत्रिक गणराज्य के निर्माण की यात्रा आरंभ की। भारत के संस्थापक सदस्यों ने एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना की थी जहाँ धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय और समानता आधारशिला होगी। असंपृश्यता का उन्मूलन, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार और समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना सभी इन सद्दिधान्तों को बनाए रखने के उद्देश्य से की गई थी।

हालाँकि, यह यात्रा चुनौतियों से रहित नहीं रही। आपातकाल की अवधि (वर्ष 1975-1977) इस बात का एक स्पष्ट उदाहरण है कि राजनीतिक विशेषाधिकार की खोज किस तरह लोकतांत्रिक सद्दिधान्तों को कमजोर कर सकती है। नागरिक स्वतंत्रता का निलंबन, प्रेस की सेंसरशिप और राजनीतिक विशेषाधिकारों को जेल में डालना लोकतांत्रिक और नागरिक अधिकारों के सद्दिधान्तों से स्पष्ट रूप से अलग होना दर्शाता है। यह अवधि एक अनुस्मारक के रूप में कार्य करती है कि जब विशेषाधिकारों को सद्दिधान्तों पर प्राथमिकता दी जाती है, तो वह दोनों से हाथ धो बैठता है।

भारत की राजनीतिक और नौकरशाही व्यवस्था में भ्रष्टाचार एक और ऐसा कषेत्र है जहाँ विशेषाधिकारों की चाहत सद्दिधान्तों को कमजोर करती है। 2010 के राष्ट्रमंडल खेल घोटाले और 2जी स्पेक्ट्रम मामले इस बात के उल्लेखनीय उदाहरण हैं कि कैसे व्यक्तिगत और वित्तीय लाभ की चाहत पारदर्शिता और जवाबदेही के सद्दिधान्तों से समझौता कर सकती है। इन घोटालों ने न केवल भारत की अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा को धूमिल किया बल्कि सरकारी संस्थानों में जनता के विश्वास को भी समाप्त कर दिया।

**भारत का तीव्र आर्थिक विकास अक्सर पर्यावरणीय स्थिरता की कीमत पर हुआ है।** आर्थिक विशेषाधिकारों की खोज में सतत विकास के सिद्धांत को प्रायः दबा दिया जाता है। औद्योगिक परियोजनाओं, खनन गतिविधियों और शहरी विस्तार ने महत्वपूर्ण पर्यावरणीय गतिवृत्त को जन्म दिया है, जिससे पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित हुआ है और स्वदेशी समुदाय वसिस्थापित हुए हैं।

नर्मदा बचाओ आंदोलन (NBA) विकास विशेषाधिकारों और पर्यावरण सिद्धांतों के बीच संघर्ष का एक उदाहरण है। मेधा पाटकर जैसे कार्यकर्ताओं के नेतृत्व में इस आंदोलन ने नर्मदा नदी पर बड़े बांधों के निर्माण का विरोध किया, जिससे हजारों लोगों के वसिस्थापित होने और स्थितिकी संतुलन बगिड़ने का खतरा था। आंदोलन ने सतत विकास और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर बल दिया, यह तर्क देते हुए कि ऐसी परियोजनाओं का लाभ मानव वसिस्थापन और पर्यावरणीय नुकसान की कीमत पर नहीं होना चाहिये। कुछ सफलताओं के बावजूद, आंदोलन पर्यावरणीय सिद्धांतों के साथ आर्थिक विशेषाधिकारों को संतुलित करने के लिये चल रहे संघर्ष को उजागर करता है।

भारतीय न्यायपालिका को प्रायः संवैधानिक सिद्धांतों के संरक्षक के रूप में देखा जाता है। हालाँकि, न्यायिक भ्रष्टाचार और राजनीतिक हस्तक्षेप के उदाहरणों ने न्यायिक सत्यनिष्ठा में कमी के बारे में चर्चा उत्पन्न की है। जब न्यायिक विशेषाधिकार, जैसे अनुचित प्रभाव और वित्तीय लाभ, नष्पिक्षता और न्याय पर हावी हो जाते हैं, तो अधिक शक्ति का सिद्धांत खतरे में पड़ जाता है।

भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ आरोपों और अयोध्या मामले में विवादास्पद तरीके से नपिटारे जैसे हाई-प्रोफाइल मामलों ने न्यायपालिका की स्वतंत्रता के बारे में विवाद उत्पन्न किया है। ये उदाहरण तात्पर्य हैं कि जब न्यायिक कर्त्ता व्यक्तिगत विशेषाधिकारों को प्राथमिकता देते हैं, तो न्याय और नष्पिक्षता के मूलभूत सिद्धांतों से समझौता होता है, जिससे अधिक व्यवस्था में जनता का विश्वास कम होता है।

किसी भी लोकतंत्र को सत्ता पर अंकुश लगाने और बेजुबानों की आवाज़ बनने के लिये स्वतंत्र प्रेस की जरूरत होती है। भारत में, मीडिया ने भ्रष्टाचार को उजागर करके, सामाजिक न्याय की वकालत करके और सार्वजनिक वाद को बढ़ावा देकर लोकतांत्रिक सिद्धांतों को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालाँकि, मीडिया पर मजबूत कॉर्पोरेट और राजनीतिक हितों के बढ़ते प्रभाव के कारण यह कार्य संकट में है।

मीडिया संसरण, पत्रकारों का उत्पीड़न और पेड़ न्यूज का प्रसार पत्रकारिता की ईमानदारी पर राजनीतिक और आर्थिक हितों को प्राथमिकता देने की ओर एक बदलाव का संकेत देता है। असहमत जिताने वालों पर कार्रवाई और पत्रकारों और कार्यकर्ताओं के खिलाफ राजद्रोह कानूनों का इस्तेमाल चर्चाजनक रुझान हैं जो दर्शाते हैं कि विशेषाधिकारों की खोज कैसे भाषण की अभिव्यक्ति और लोकतंत्र के सिद्धांतों को समाप्त कर सकती है।

भारत का अनुभव विशेषाधिकारों और सिद्धांतों के बीच संतुलन को दर्शाता है। स्वतंत्रता संग्राम से लेकर समकालीन चुनौतियों तक, देश की प्रगति दर्शाती है कि जब विशेषाधिकार सिद्धांतों पर हावी हो जाते हैं, तो दोनों ही संकट में पड़ जाते हैं। न्याय, समानता, लोकतंत्र और स्थिरता जैसे सिद्धांतों को बनाए रखना दीर्घकालिक सामाजिक कल्याण के लिये महत्वपूर्ण है। भारत के इतिहास और समकालीन समाज के विभिन्न उदाहरण सिद्धांतों के प्रति सतर्कता और प्रतिबद्धता की आवश्यकता को उजागर करते हैं। चाहे भ्रष्टाचार का मुकाबला करना हो, सामाजिक असमानताओं को दूर करना हो, पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करना हो, या न्यायिक और मीडिया की अखंडता की रक्षा करना हो, विशेषाधिकारों के स्थान पर सिद्धांतों पर बल दिया जाना चाहिये। जो लोग अपने सिद्धांतों पर अडिग रहते हैं, भले ही उन्हें अल्पकालिक विशेषाधिकारों की कीमत चुकानी पड़े, वे अपने समाज की स्थायित्व और अखंडता सुनिश्चित करते हैं। इसके विपरीत, जब विशेषाधिकारों को प्राथमिकता दी जाती है, तो विशेषाधिकार और मूलभूत सिद्धांत दोनों ही संकट में पड़ जाते हैं। इस प्रकार, भारत के लिये, किसी भी राष्ट्र की तरह, स्थायी प्रगति और स्थिरता की कुंजी अपने मूल सिद्धांतों को सबसे ऊपर रखने और उन्हें बनाए रखने में निहित है।

**फलों से लदा हुआ पेड़ हमेशा झुका रहता है। यदि आप महान बनना चाहते हैं, तो वनिम्र और वनीत बनें।**

**-श्री रामकृष्ण परमहंस**